नारी गौरव की स्थापना में दयानन्द सरस्वती का योगदान

✧ अतुल गुप्ता ★ सुरेश सोलंकी

वैदिक काल में नारी को अत्युच्च स्थान प्राप्त था। वेदों के सहस्त्रों मन्त्रों में नारी की गरिमायी छवि को अंकित किया गया है। उषा, आपः, अदिति, सरस्वती और देवताओं को सम्बोधित करने वाले जो वैदिक मन्त्र मिलते है उनमें नारी–महात्मय का ही उल्लेख किया है। ऋग्वेद 8/33/11 में स्त्री को यज्ञ में ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने के योग्य बताया गया है। ऋग्वेद के दशम मन्डल का 85 वाँ सूक्त नारी की महिमा का बहुविध आख्यान करता है। इसके वे मन्त्र जिनकी ऋषिका सूर्या सावित्री है, नारी गौरव को उपस्थापित करते है। वेदों में नारी को गृहस्थ की गुरूतर धुरा का वहन करने की प्रेरणा तो दी है, समय आने पर उसे वीरभावनाओं से युक्त होकर प्रचण्ड कर्मो में लग जाने का भी आदेश दिया है। वैदिक काल के परवर्ती ब्राह्मण तथा उपनिषद् काल में भी नारी का गौरव तथा महत्त्व अक्षुण्ण रहा। शतपथ ब्राह्मण तथा तदनुवर्ती बृद्धारण्यकोपनिषद् में वाचक्नवी गार्गी नामक ब्राह्मवादिनी नारी का आख्यान अनेकत्र आया है। याज्ञवल्क्य की विदुषी पत्नी का आख्यान भी बृद्धारण्यकोपनिषद (214) में वर्णित हुआ है। मनु ने भी नारी की महिमा को अत्यन्त उदात्त शब्दों में व्यक्त किया है वे कहते हैं–

;= uk;Lr| iT;Ur| jeUr| r= norkA
;=rkLr| u iT;Ur| lokLr=kQyk% fd;k%AA

भारत के पुराकालीन समाज ने नारी को अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। महाभारत युद्ध की समाप्ति से ही आर्यावर्त्त देश के पतन का काल आरम्भ होता है। जहाँ रामायण के काल में देवर लक्ष्मण अपनी भाभी के भुजबन्द तथा कुण्डलों को पहचानने में असमर्थता प्रकट करते हैं और माता तुल्य सीता के केवल नुपूरों का ही अभिज्ञान करते हैं वहाँ महाभारत काल के दुर्योधन और दुःशासन आदि कौरव अपनी भातृपत्नी द्रौपदी का राजसभा के बीच अपमान करने में किन्चित्मात्र लज्जा अनुभव नहीं करते। निश्चय ही नारी की दुर्दशा की कहानी उसी दिन से आरम्भ होती है और वह मध्यकाल तक आते–आते विकराल रूप धारण कर लेती है। विदेशी आक्रान्ताओं से त्रस्त भारत नारी के शील और सतीत्व को बचाने के लिए परदे की प्रथा, बाल–विवाह, सतीदाह आदि का प्रचलन हुआ जो अन्ततोगत्वा नारी की अधोगति तथा दुर्दशा के कारण बने।

उन्नीसवीं शताब्दी को भारतीय इतिहास में नवजागरण और नवोदय का काल स्वीकार किया गया। कुछ तो पश्चिमी सभ्यता और विचारधारा का प्रभाव किन्तु उससे भी अधिक अपने गौरवपूर्ण अतीत के पुनः स्मरण तथा स्वदेश में शताब्दियों से प्रतिपादित उदात नैतिक मूल्यों की पुनः स्थापना के कारण भारत के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में पुनर्जागरण का स्फूर्तिदायक उन्मेष हुआ। इसके प्रथम ज्योतिर्धर ब्रह्म समाज के संस्थापक राजाराममोहनराय ने नारी को समुचित सम्मान ही नहीं दिया गया, उसके प्रति किये जाने वाले बर्बर और अमानवीय अत्याचारों का प्रबल प्रतिकार भी किया। ऋषि दयानन्द ने तो भारतीय नारी की दुर्दशा को समाप्त कर इसके अभ्युत्थान का मार्ग प्रशस्त किया।

egf"k n;kUkUn d xUFkk e ukjh

महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों की अतःसाक्षी के आधार पर नारी विषयक उनके प्रगतिशील विचारों को जानने का प्रयत्न करेंगे। उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में कन्याओं के शिक्षण, वेदाध्ययन, ब्रह्मचर्य, विवाह, यज्ञोपवीत आदि विषयों पर प्रभूत चर्चा की गई है। लड़कों की भांति लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा के वे पक्षपाती हैं, जब कि उनके युग में कन्याओं की शिक्षा की कल्पना करना ही दुष्कर था। इस ग्रन्थ के दूसरे समुल्लास में वे लिखते है "जब पाँच–पाँच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।" थोड़ा बडा होने पर भी अपनी संतानों को आचार्य कुल में भेजने की भाँति लड़कियों को भी उन गुरूकुलों में प्रविष्टि कराने की बात कहीं जहाँ पूर्ण विदुषी स्त्रियाँ विद्यादान कराने वाले हो।

स्वामी जी बालकों की अनिवार्य शिक्षा के पक्षपाती थे इसलिए उन्होने लिखा है –"इसमे राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवे अथवा आँठवे वर्ष के आगे कोई अपने लडकों और लडकियों को घर में ना रख सकें,पाठशाला में अवश्य भेज देवें। "वे लड़को और लड़कियों की सहशिक्षा के विरोधी थे अतः उन्होंने स्पष्ट कहा कि कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरूषों की पाठशाला में पुरूष रहें। पुरूष की भाँति वे कन्याओं द्वारा ब्रह्मचर्य–पालन के समर्थक हैं और बाल–विवाह के कट्टर विरोधी।

स्वामी दयानन्द के चिन्तन की एक विशेषता है कि मन्वादि स्मृतियों में जो विद्या–ग्रहण तथा ब्रह्मचर्य के पालन विषयक विधान प्रत्यक्षतया बालकों के लिए दिखाई पड़ते हैं, वे उन्हें बालक और बालिकाओं दोनों के लिए लागू करते हैं। उदाहरण के लिए **^otl;Ue/k eklap xU/k ekY;l jlku fL=;%A*** आदि श्लोकों में बालक ब्रह्मचारियों के लिए जो आचरण वर्जनीय कहा गया उसे स्वामी जी बालिका ब्रह्मचारिणी के लिए भी वर्जित मानते हैं। स्वामी दयानन्द तो युद्ध विद्या में नारी का अधिकार स्वीकार करते हैं। इसमें वे रानी कैकेयी का उदाहरण देते हैं, जो राजा दशरथ के साथ युद्ध में गई थीं।वे स्त्रियों के आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों विद्याएँ सिखाने के पक्षपाती हैं। साथ ही स्त्रियों के लिए व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित और शिल्पविधा का अध्ययन आवश्यक मानते है। समावर्तन संस्कार होने तक लड़के और लड़की का आचार्य कुल में रहना आवश्यक है, यह स्वामी दयानन्द का सुनश्चित विचार था।

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लेखक ने समावर्तन विवाह और गृहस्थाश्रम की विधि वर्णित की है। इस प्रसंग में उन्होंने बाल्यकाल के विवाह करने का प्रबल प्रतिवाद किया और इस प्रथा को देश तथा समाज के

✧ 0;k[;krk] 'kk-ek/ko egkfo|ky;] pUnjh ★ 'kk/k Nk=] cjdrmYykg fo'ofo|ky;] Hkkiky

लिए घातक ठहराया। साथ ही वे समान गुण, शील और स्वभाव वाले लड़के और लड़की के विवाह के पक्षकर हैं। मनु को उद्धृत करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि चाहे लड़का लड़की जीवनपर्यन्त कुमार (अविवाहित रहे) किन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरूद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी नहीं होना चाहिए। वे स्वयंवर विवाह के समर्थक हैं। स्वयंवर का अर्थ वे इतना ही लेते हैं कि विवाह लड़के लड़की की स्वेच्छा से होना चाहिए। इसमें उनके माता–पिता की सम्मति भी होनी चाहिए किन्तु अन्ततः विवाह का निर्णय लड़का–लड़की स्वयं ही करें। स्वयंवर से स्वामी जी का अभिप्राय राम–सीता, नल–दमयन्ती आदि पुराकालीन स्वयंवर विवाहों से नहीं है। स्वामी जी लिखते हैं–''जब तक इसी प्रकार सब ऋषि–मुनि, राजा महाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के स्वयंवर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी।''

मनु ने अपने श्लोक –^**iku ntulx% iR;k p fojgk·VueA** Loluk·U;xgokl'p ukjh lUn"k.kkfu "kVAA**(1/13) में स्त्रियों को दूषित करने वाले छः दोषों (मद्य–पान, दुर्जन–संग, पति–वियोग, व्यर्थ भ्रमण, अन्य घर में सोना तथा वहां निवास करना) का उल्लेख किया तो इसके अर्थ में स्वामी जी ने इतना अपनी ओर से जोड़ दिया कि ये दोष पुरूषों के भी हैं। दयानन्द की न्याय–तुला दोनों के लिए समान हैं। ऋषि दयानन्द के जीवन–काल में भारत की नारी समाज घोर अशिक्षित, तिरस्कार का पात्र तथा सार्वत्रिक अवहेलना एवं उपेक्षा का शिकार था। उस युग में जब स्त्रियों के सामान्य पठन–पाठन की प्रवृत्ति ही नहीं थीतो उच्च शिक्षित विदुषी नारियों का तो मिलना दुर्लभ ही था।

_XonkfnHkk";Hkfedk e ukjh&xkjo

सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तो दयानन्द सरस्वती के प्रसिद्ध एवं बड़े ग्रन्थो में गिने जाते हैं। अपने लघु ग्रन्थों में भी यथाप्रसंग नारी की गरिमा की स्थापना तथा उसके अधिकारों के संरक्षण की बात दयानन्द ने उठाई है। व्यवहारभानु का लेखन बालकों को शिष्टाचार का पाठ पढाने तथा घर, परिवार तथा समाज में रहते हुए सभ्याचार की शिक्षा देने के लिए किया गया था।

ब्रह्मचर्य के प्रसंग के लेखक ने कन्याओं को पढाने का समर्थन किया है और अथर्ववेद के मन्त्र (11/5/18) का प्रमाण भी दिया है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए स्त्री पुरूष के एक दूसरे को प्रसन्न रखने तथा अपने आचार व्यवहार द्वारा समस्त परिजनों को सन्तुष्ट रखने की शिक्षा व्यावहारभानु में दी गई है। लेखक ने मनु के श्लोक ''सन्तुष्टों भार्यया भर्ता भार्या तथैव च।'' (3/60) को उद्धत कर पुरूष तथा स्त्री को एक दूसरे के प्रति प्रेम युक्त व्यवहार करने का निर्देश दिया है।

lLdkjfof/k e ukjh dk LFkku

सोलह संस्कारों की विधि तथा व्याख्या के रूप में लिखा गया दयानन्द सरस्वती का ''संस्कारविधि'' ग्रन्थ भी नारी की गौरव गरिमा तथा गृहस्थाश्रम में उसकी महत्वपूर्ण स्थिति को संस्थापित करने की दृष्टि से अपूर्व है। नारी विषयक समस्याओं की चर्चा विभिन्न संस्कारों के प्रसंग में विवेचित हुई है। तथा विद्वान लेखक ने उनका समुचित समाधान किया है। यथा गर्भाधान–संस्कार की विवेचना करते हुए उसने स्त्रियों के युवावस्था में विवाह करने की आवश्यकता बताई तथा बाल्यावस्था में होने वाले विवाहों की हानियों से पाठकों को अवगत कराया। यहाँ एक ध्यान देने की बात यह है कि यद्यपि बाल्यावस्था में किये जाने वाले संस्कारों में ग्रन्थकार ''बालक'' शब्दों का प्रयोग करता है, किन्तु उसका आशय् बालक और बालिका दोनों से ही है। बालक की ही भॉति बालिकाओं के सभी संस्कार यथा विधि करा उसे इष्ट है। प्रत्येक संस्कार के अन्त में जहॉ आर्शीवाद सूचक वाक्य लिखा है वहॉ बालक या बालिका का उपयुक्त प्रयोग यथास्थिति किया जाना चाहिए, लेखक को यही अभीष्ट है।

वैदिक संस्कृति में नारी की महतीय स्थिति का आंकलन तभी सम्भव है जब हम विवाह–संस्कार में प्रयुक्त वैदिक मंत्रों के अर्थो का गम्भीरता से चिन्तन करें। संस्कारों में क्रियाकाण्ड की अधिकता रहती है अतः उनमें विनियुक्त सभी मन्त्रों के अर्थो को लिखना स्वामी जी ने आवश्यक नहीं समझा तथापि कतिपय मन्त्रों में निहित वधू के कर्त्तव्य विधायक संकेतों का खुलासा उन्होंने अवश्य किया। फलतः समञजन्तु विश्वदेवाः (ऋ0 10/85/47) अधोरचक्षुरपतिध्येधि (+म्0 10?85?44) गृभ्णामि ते सौभगत्वाया (ऋ0 10/75/36) इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी (अथर्व0 14/1/54) अहं विष्यामि (अथर्व0 14/1/57) आदि मंत्रों का भावार्थ देना उन्होंने आवश्यक समझा। दामपत्य–जीवन की विशिष्टता के द्योतक ये मन्त्र नारी के दाायित्वों, अधिकारों तथा कर्तव्यों की घोषणा करते हैं। वैदिक जीवन–पद्धति में नर और नारी में सखा भाव स्वीकार किया गया है। यहॉ यदि नर को महत्व प्राप्त है तो नारी भी उतनी ही महीयसी एवं गौरवशालिनी है। इसका एक प्रतीक सप्तपदी विधि का अन्तिम वाक्य 'ओं सखा सप्तपरदी भव' है जिसमें वर वधू को सखा कह कर सम्बोधित करता है और अपने तुल्य समझता है न न्यून और न अधिक। गृहस्थाश्रमविधि लिखते समय स्वामी जी ने परिवार और समाज में स्त्री की महत्ता को दृढ़ता से स्थापित किया है।

vuor% fir% i=k ek=k Hkor lkeuk%A
tk;k iRFk eèkerh okp 'kfUrokeAA
rFkk] ek Hkkrk Hkkrj f}{kUek Lolkjer LolkA
lE;¥p% lork HkRok okp onr Hkn;kAA

इन मन्त्रों की व्याख्या कर उन्होंने परिवार में माता, पत्नी तथा बहिन के कर्त्तव्यों का निर्धारण किया। परिवार में शान्ति और सौमनस्य के लिए नारी को समान रूप से उत्तरदायी बताया। सत्यार्थप्रकाश की ही भाँति संस्कारविधि में नारी गौरव को प्रस्थापित करने वाले श्लोकों को पर्याप्त संख्या में उद्धृत किया गया है। समग्र रूप से विचार करने से स्पष्ट होता है कि भारत के आधुनिक समाज–सुधारकों में जहाँ स्वामी दयानन्द अनुपमेय है वहाँ नारी जागरण को योगदान भी अद्वितीय हैं। विभिन्न शोधार्थी विद्वानों तथा सुधी जनों ने उनके द्वारा किये गये नारी उत्थान विषयक कार्यों की भरपूर प्रशंसा की है। फ्रांस के प्रसिद्ध विचारक तथा साहित्यकार स्व0 रोमां रौलां ने इस विषय में लिखा है – ''भारत की स्त्री जाति की पतितावस्था को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी निर्भीकता तथा उदारता का परिचय दिया।''

lUnHk lph

1. उपदेशमञजरी में 11 वाँ प्रवचन 2. संत्यार्थ प्रकाश– तृतीय समुल्लास 3. मनुस्मृति 1/10 4. सत्यार्थप्रकाश–चतुर्थ समुल्लास 5. संस्कारविधि 6. व्यवहारभानु 7. ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका 8. संस्कृत–वाक्यप्रबोध